Research Paper Physical Education

वेदों में पर्यावरण
Vedome Paryavaran

* Ramesh Singh

*Associate Professor, Physical Education, Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.) New Delhi

ABSTRACT

पर्यावरण का सीधा अर्थ है 'प्राकृतिक वातावरण'। इसके मुख्य रूप से तीन अंग हैं – भूमि, हवा व जल। इनका संतुलन भङ्ग होने की अवस्था का नाम ही प्रदूषण है। प्रदूषण के कारण पर्यावरण असंतुलित होता है। असन्तुलन की समस्या प्राकृतिक भी है और मानव निर्मित भी। दावानल का धुआं, ज्वालामुखी की राख, धूल–कण, सामुद्रिक प्रदेशों में नमक के कण आदि प्रकृति निर्मित हैं।

पर्यावरण को संरक्षित रखने के लिये प्रकृति तथा मानव का उचित समीकरण बहुत आवश्यक है। हमारे वैदिक मंत्रों में उल्लेख है
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावषिश्यते।।

वनस्पति जगत् के विना अन्य जीवन धारियों की उत्पत्ति ही सम्भव न थी। प्रकृति ने वनस्पति जगत् पैदा करके जीवन के आस्तित्व के लिये सभी अनुकूल परिस्थितियाँ बनाई। ऋंग्वेद विष्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है इस आधार पर भारतीयों को विष्व में सर्वप्रथम ऋतुवेत्ता कहा जा सकता है। यजुर्वेद में कहा गया है –

"वैदाइमस्य भुवनस्यनाभि,
वेद द्याता पृथिवी अन्तरिक्षम्।
वेदसूर्यस्म बृहतो जनित्रमर्थोवेद
चन्द्रसंयतोजा।।"।।यजुर्वेद।।

अर्थात् सृश्टि के आरम्भ से ही मानव ने अपने को अनगिनत तारों की छाँव में पाया, यहीं से उनमें अनुसन्धान की भावना का उदय हुआ और इस क्षेत्र में उन्होंने इतना गहरा अध्ययन किया मानो सारा ब्रह्माण्ड आँवले के फल की तरह करतल पर रखा हो।

प्राचीन भारत में प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों से अत्यधिक भावात्मक लगाव था। यह ही जीवन या जीवन का रहस्य था, जीवन का लक्ष्य था, जीवन का धर्म था।

वैदिक काल से हवन का प्रचलन चला आ रहा है। हवन में प्रकृति की मूल जडी–बूटी, तिल, चावल, जौ, बीज, धूप, घी इत्यादि पुनः अग्निदेव को समर्पित की जाती है। इससे सारा वातावरण सुगन्धित हो जाता है। ऐसी मान्यता थी, कि अग्नि से सात्विक चीजों के होने से वातावरण षुद्ध होता है। भोजन से पहले रोटी निकालना गाय, चींटी, कौए, कुत्ते, आदि को जीवित रखने की भावना व्यक्त करता था।

प्राचीन भारत में प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों से अत्यधिक भावात्मक लगाव था। यह ही जीवन या जीवन का रहस्य था, जीवन का लक्ष्य था, जीवन का धर्म था।

वैदिक काल से हवन का प्रचलन चला आ रहा है। हवन में प्रकृति की मूल जडी–बूटी, तिल, चावल, जौ, बीज, धूप, घी इत्यादि पुनः अग्निदेव को समर्पित की जाती है। इससे सारा वातावरण सुगन्धित हो जाता है। ऐसी मान्यता थी, कि अग्नि से सात्विक चीजों के होने से वातावरण षुद्ध होता है। भोजन से पहले रोटी निकालना गाय, चींटी, कौए, कुत्ते, आदि को जीवित रखने की भावना व्यक्त करता था।

Keywords : पर्यावरण

ॐ पूः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावषिश्यते।।

अर्थात् मानव अपनी इच्छाओं को वष में रखकर प्रकृति से उतना ही ग्रहण करे कि उसकी पूर्णता को क्षति नहीं पहुँचे।

आज विष्व के कोने–कोने के पर्यावरण के प्रति चिन्ता की आवाज उठ रही है वह हमारे ऋशि मुनियों ने वैदिक काल में ही दे दी थी, क्योंकि वे पृथ्वी को धरती माँ मानते हुये उसकी सुरक्षा करने, उसको संवारने, वन्य जीव–जन्तुओं आदि की रक्षा करने के प्रति सदैव सजग थे। हमारे ऋशि–मुनियों ने वेदों की ऋचाओं का सृजन प्रकृति की गोद में ही किया था। सदियों पूर्व गर्ग, कपिल, कष्यप और पाराषर जैसे मुनिगण ने पर्यावरण को जन आन्दोलन के रूप में लिया था।

वनेऽस्मिन् मामके नित्य पुत्रवत् परिरक्षिते।
पत्रांकुर विनाषाय फलफूलाभावाय च।।

अर्थात् वनों को पुत्रवत् मानकर उनकी रक्षा के लिये सदैव तत्पर वाल्मीकि चेतावनी देते हैं, कि जो भी मेरे वन पत्र व अंकुर का विनाष और फल फूल का अभाव करेंगे, वे निष्चित रूप से षाप के भागी होंगे।

प्राचीन काल में मानव प्रकृति के साथ तालमेल रखते हुये अपना जीवन यापन करते थे। प्रातः उठते ही सब लोग सूर्य नमस्कार से लेकर, जल अरघ तक विविध रीतियों से सूर्य देवता के प्रति सम्मान व कृतज्ञता व्यक्त करते थे। ऊर्जा के असीमित स्रोत सूर्य को देवता मानकर कहा गया है – 'सूर्य देवो भव' अर्थात् सूर्य को देवता समझो। सूर्य देवता भूमण्डल का जीवन दाता है, क्योंकि विना उसकी ताकत से, उसके प्रकाष से हमारी पृथ्वी पर किसी भी प्रकार के वन और वनस्पतियों की उत्पत्ति किसी भी स्थिति और परिस्थिति में सम्भव नहीं है और विना वनस्पति जगत् के जीव जगत् की कल्पना सरासर असम्भव है। ऋग्वेद में कहा गया है – सूर्य मनुश्य के सभी कृत्यों को देखते हैं 'पष्यन् जन्मानि सूर्य' – (ऋग्वेद 1660ध्2) वे संसार को स्थिर रखने वाले एवं जगत् के रक्षक हैं। 'विष्वस्य स्थार्जुगतष्च गोपा' (ऋग्वेद 7660ध्2) उसके विना इस संसार की कल्पना नहीं की जा सकती। 'सूर्य आत्माजगतस्तस्थुष्च' (1ध115ध1) सूर्य स्थावर तथा जंगम जगत् की आत्मा है, तभी तो वैदिक ऋशि कामना करता है कि कभी सूर्य से हमारा वियोग न हो – 'नः सूर्यष्च संदृषे मा युवाथाः'। सूर्य सम्पूर्ण पारस्थितिकी चक्र को ऊर्जा प्रदान कर नियंत्रित करता है।

वृक्ष मानव जीवन के आधार ही नहीं पूर्वज भी हैं। विज्ञान भी मानता है कि पृथ्वी पर सबसे पहले पेड़ पौधों की उत्पत्ति हुयी थी। करोड़ों वर्श पहले धरती की सतह पर सरल पौधे अंकुरित हुये और 40 करोड़ वर्श पहले धरती पर जटिल पौधों का विकास प्रारम्भ हुआ। मानव का अस्तित्व तो मात्र 10 लाख वर्श पुरानी घटना है। इस हिसाब से हम मानव प्रकृति की सबसे छोटी सन्तान हैं, वृक्ष हमारे पुरखे हैं तभी तो हमारे पूर्वजों ने वृक्षों को इतना सम्मान दिया और नानाप्रकार की लताओं के उत्पन्न होने की कामना की – 'प्रथम जायन्ता वीरुधो विष्वरूपा' – (अथर्व वेद 4–15–3) और पृथ्वी से प्रार्थना की, कि उसके ऊपर लहराते हरे–भरे जंगल सुखप्रद हों – 'अरण्य ते पृथिवी, स्योनमस्तु' (अथर्ववेद – 12–1–11) रुद्र को वृक्ष और अरण्यों का स्वामी कहकर 'वृक्षाणां पतये नमो नमः' तथा 'अरण्यानां पतये नमो नमः' (यजुर्वेद 5–19–20) द्वारा उसका नमन किया।

वनस्पति जगत् के विना अन्य जीवन धारियों की उत्पत्ति ही सम्भव न थी। प्रकृति ने वनस्पति जगत् पैदा करके जीवन के आस्तित्व के लिये सभी अनुकूल परिस्थितियाँ बनाई।

ऋंग्वेद विष्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है इस आधार पर भारतीयों को विष्व में सर्वप्रथम ऋतुवेत्ता कहा जा सकता है। यजुर्वेद में कहा गया है –

"वैदाइमस्य भुवनस्यनाभि,
वेद द्याता पृथिवी अन्तरिक्षम्।
वेदसूर्यस्म बृहतो जनित्रमर्थोवेद
चन्द्रसंयतोजा।।"।।यजुर्वेद।।

अर्थात् सृश्टि के आरम्भ से ही मानव ने अपने को अनगिनत तारों की छाँव में पाया, यहीं से उनमें अनुसन्धान की भावना का उदय हुआ और इस क्षेत्र में उन्होंने इतना गहरा अध्ययन किया मानो सारा ब्रह्माण्ड आँवले के फल की तरह करतल पर रखा हो।

वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम संसार से पलायन नहीं संसार के कल्याण हेतु हमारी वनस्थली थे, जहाँ षान्त व एकान्त वातावरण में जीवन की सफलता व लोककल्याण के लिये साधना की जाती थी। किसी कारण वष वृक्ष को काटना भी पड़े तो प्राचीन भारत में यह धारणा थी कि मंत्रोच्चारण द्वारा वृक्ष पर निवास करने वाले जीव–जन्तुओं से क्षमा प्रार्थना कर उनके लिये अन्यत्र व्यवस्था करने की याचना की जाये।

प्राचीन भारत में प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों से अत्यधिक भावात्मक लगाव था। यह ही जीवन या जीवन का रहस्य था, जीवन का लक्ष्य था, जीवन का धर्म था।

वैदिक काल से हवन का प्रचलन चला आ रहा है। हवन में प्रकृति की मूल जडी–बूटी, तिल, चावल, जौ, बीज, धूप, घी इत्यादि पुनः अग्निदेव को समर्पित की जाती है। इससे सारा वातावरण सुगन्धित हो जाता है। ऐसी मान्यता थी, कि अग्नि से सात्विक चीजों के होने से वातावरण षुद्ध होता है। भोजन से पहले रोटी निकालना गाय, चींटी, कौए, कुत्ते, आदि को जीवित रखने की भावना व्यक्त करता था।

यजुर्वेद में कहा गया है दृ
धॉना लेखीरन्तरिक्ष मा हि सीः पृथिका संभवं
अयं हित्वा स्वार्धि तिस्ते तिजनः
प्राणितापं पहते सौभागाय।
अतस्त्वं देव वनस्पते षतवल्सो
विरोहसहस्त्रंवल्षा विवयं रुहेम।।5ध्43।।

अर्थात् वृक्षो को न काटो। जल व पृथ्वी की रक्षा करना धर्म है। पृथ्वी से उतना ही भाग निकालो जिससे उसकी पूर्ति की जा सके।

यजुर्वेद में भी ऋशि ने यह कामना की है कि वायु, तेज, जल, दिन–रात आदि पदार्थ सभी सन्तुलित रहते हुये समाज के लिये षान्ति और सुखसमृद्धि प्रदान करते रहें। –

षं नो वातः पवतां षं नस्तपतु सूर्यः।
षं नः कनिक्रद्द देवः पर्जन्यो अभिवर्शतु।।

मांगलिकअवसरों पर षांतिपाठ के रूप में उच्चारित किये जाने वाले स्वस्तिवाचन द्यौः षान्तिरन्तरिक्षम्ं इत्यादि मन्त्र में भी सभी प्राकृतिक उपादानों से कल्याण की कामना की गई है।

वृक्ष पर्यावरण सन्तुलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिये पौराणिक साहित्य में वृक्षों को बहुत महिमान्वित किया है। पौराणिक काल में पर्यावरण प्रदूशण की समस्या नहीं थी अतः धार्मिक व सामाजिक उपयोग की दृश्टि से ही वृक्षों का महत्व प्रकाषित करते हुये वृक्षारोपण और वृक्षसंरक्षण की प्रेरणा दी गई है।

मत्स्यपुराण में वृक्षोपासना और वृक्ष–महोत्सव पर विचार किया गया है। पौराणिक मनीशियों का मत था कि वृक्षों को बच्चों की तरह परिपुश्ट और संस्कार सम्पन्न किया जाना चाहिये।यहाँ तक कि वृक्षों का सुवर्णषलाका से अञ्जन से संस्कृत करें।

सवौशध्युदकैः सिक्तान् विश्टातकविभूशितान्।

वृक्षान् माल्यैरलंकृत्य वासोभिः परिवेश्टयेत्।।

अर्थात् वृक्षों को स्वस्थ रखने के लिये उन्हें यथोचित औशधियों से उपचरित जल से सींच कर, सुगन्धित द्रव्य लगाकर, मालाओं से सजाकर, वस्त्रों से लपेटकर सुरक्षित रखें।

वृक्षों की पुश्पसमृद्धि और फलसम्पत्ति के लिये गुग्गुल की धूप श्रेश्ठ मानी जाती है। ताँबे के बर्तनों में जल भर कर वस्त्र, गन्ध लेप आदि करके वृक्षों के पुश्पों का संस्कार करना चाहिये।

सभी पेड़ों की जड़ों में जलपूरित कुम्भ रखे जाने चाहिये। वृक्षों के स्वास्थ्य और संवृद्धि के लिये उसी प्रकार यज्ञ भी करना चाहिये, जिस प्रकार लोकपालों और इन्द्र आदि देवों के निमित्त यज्ञ किया जाता है।

अभिशेक करने के लिये मांगलिक वाद्यों और गीतों के साथ–साथ वरुण देवता से सम्बद्ध ऋगवेद, सामवेद, और यजुर्वेद के मन्त्रों का उच्चारण करते हुये उन जलकलषों से वृक्षों का अभिशेक किया जाये।

बगीचे के वृक्षों के निमित्त किए जाने वाले होम में सरसों, जौ और काले तिलों का प्रयोग किया जाना चाहिये और ढाक की समिधायें डाली जानी चाहियें।

श्रेश्ठ विद्वानों द्वारा इस रीति से वृक्षमहोत्सव किये जाने पर श्रेश्ठ फलों की प्राप्ति होती है।

वृक्षमहोत्सव के फलादेष के विशय में पूराणाचार्यों की मान्यता है कि जो कोई मनुश्य एक भी वृक्ष आरोपित करता है, वह स्वर्ग में अनन्तकाल तक सुख भोगता है।

वराह पुराण में बताया गया है कि वृक्षारोपण करना किसी अन्य दान से कम नहीं है अपितु यह भूमिदान व गौदान के समान है –

भूमिदानेन ये लोका गोदानेन च कीर्तिताः।
ते लोका प्राप्यन्ते पुंभिः पादपानां प्ररोहणे।।

पुराणाचार्यों ने पादपारोपण के महत्त्व को दुःखनिवृत्ति और सुखसमृद्धि से जोड़ते हुये जनता को पेड़ लगाने के लिये प्रेरित किया है। तदनुसार जो व्यक्ति एक पीपल, एक नीम या एक बरगद या दस पुश्पपादप या दो अनार या दो नींबू या पाँच आम के पेड़ लगाता है वह कभी भी कश्ट को प्राप्त नहीं होता।

पुराणों में वृक्षों को सन्तान के समान घोशित करते हुये कहा गया है कि जिस प्रकार अच्छा पुत्र हर प्रकार के प्रयत्न से अपने कुल का उद्धार करता है, ठीक उसी प्रकार वृक्ष भी फल व फूलों के द्वारा अपने स्वामी के सभी दारिद्रजनित कश्टों को हर लेते हैं।

पर्यावरण – सन्तुलन अर्थात् पञ्च महाभूतों के समीकरण के विशय में भारतीय चिन्तकों को वैदिक काल में पर्याप्त चिन्ता रहती थी और इनका सन्तुलन बनाए रखने के लिये परमेष्वर से प्रार्थना की जाती थी। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 10 वें सूक्त में गौतम ऋशि कामना करते है दृ

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोशधीः।।
मधु नक्तमुशसो मधुमत् पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता।।
मधुमान् नो वनस्पतिर्मधुमॉं अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः।।

उपरोक्त इन तीनों मन्त्रों में ऋशि ने सुखद वायु, सुखद जलराषि, सुखद पेड़–पौधे, सुखदरात्रि, षुभप्रभात, सुखद पृथिवी, सुखद अन्तरिक्ष और सुखद तेज के माध्यम से स्वच्छ एवं निर्मल पर्यावरण की अभिलाशा की है।

भारतीय संस्कृति की प्राचीन परम्पराओं में यज्ञ व पूजा पाठ का विधि विधान भी विधिवत् किया जाता था। यह समस्त विधान भी पर्यावरण को षुद्ध बनाने में अपना पूरा सहयोग करते थे। यज्ञ से उठने वाला धुँआ केवल वातावरण को सुव्यवस्थित व सुगन्धित ही नहीं करता था, अपितु वातावरण के अनेक विशैले कीटाणुओं को समाप्त कर देता था, किन्तु आधुनिक काल में पाष्चात्य सभ्यता व संस्कृति की चकाचौंध ने हमें अन्धा कर दिया है। आज हम प्रकृति रूपी माँ को भोग्या समझकर उसका विध्वंस करने में तत्पर हैं। वायुमण डल में प्रतिदिन इतनी विशैली गैसें हम फैला रहे हैं, जिससे मौसम, पषु–पक्षी, पेड़–पौध ो व स्वयं हम प्रभावित हुये विना नहीं रह सके हैं। जिसके फलस्वरूप मे नित प्रतिदिन अनेक भयावह रोगों व प्राकृतिक प्रकोपों का सामना करना पड़ रहा है।

प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित है कि धर्मप्राण व्यक्ति जलाषय, वृक्षारोपण कर देवालय बनावें, वापी, पाली व जलाषय बनाकर वृक्ष लगाने से यज्ञ करने के बराबर पुण्य मिलता है।

सलिलोथानयुक्तेशु कृतेशकृतकेशु च।
स्थानेशु सान्निध्यमुपगच्छन्ति देवताः।।

कृत्रिम व प्राकृतिक जलाषयों व उपवनों में देवता निवास व संचरण करते हैं। वृक्ष रोपने की विधि का वर्णन भी हमें ग्रन्थों में मिलता है। मृदायुक्त भूमि वृक्षों के लिये उत्तम होती है तथा हरी खाद के रूप में तिल की फसल का प्रयोग किया जाना उपयुक्त है ऐसा करने से अच्छे वृक्ष लगते हैं।

वृक्षों को स्वस्थ रखने के लिये 20 हाथ का फासला रखना चाहिये। कृशि वैज्ञानिक भी भूमि की उपजाऊ षक्ति बढाने के लिये ही हरी खाद के रूप में सनई, तिल व दलहनी फसलों के प्रयोग का आज भी अनुमोदन करते हैं। वृक्ष यदि आस पास हों तो वह वृक्ष को रोगग्रसित कर देते हैं। वृक्षारोपण के लिये उचित अन्य वृक्षों के नामों का उल्लेख करते हुये वराहमिहिर कहते हैं दृ

अरिश्टषोक्युमाणषिरोश संप्रियङ्ग्रवः।
मंगलयाः पूर्वमारामे रोपणोया गृहेशुवाः।।

घर के समीप व चौत्यों में नीम, अषोक, पुन्नाग, षिरोश आदि वृक्ष लगाये जाने चाहिये। मुनि कष्यप भी कहते हैं कि अषोक, चम्पा, अरिश्ठ, पारिजात आदि वृक्ष गृह व देवालयों के लिये श्रेश्ठ हैं।

आयुर्वेद ग्रन्थों में वर्णित है दृ वैद्य को औशधि रूप में प्रयोग करने के लिये जिस पौधे के अंगों, उपांगों की आवष्यकता हो उसे सांयकाल जल से स्नान कराकर यह प्रार्थना करें कि उसे औशधि कार्य के लिये उसकी आवष्यकता है और वह पुनः इस कार्य हेतु उपस्थित होगा। तत्पष्चात् दूसरे दिन जाकर वह उसके आवष्यक छाल–मूल या फल ले आए।

इस प्रकार के पौराणिक प्रसंगों ने कालिदास जैसे महाकवि को भी वनस्पति संरक्षण का सन्देष देने की प्रोरणा दी है। रघुवंष के द्वितीय सर्ग के अनुसार भगवान षिव ने देवदारू वृक्ष को पुत्र के समान संवर्द्धित किया था और पार्वती ने उसे बड़े स्नेह से सींचा था, परन्तु जंगली हाथी के कपोल के रगड़ से उस देवदारू वृक्ष की तनिक छाल छील जाने से पार्वती को महान दुःख हुआ था। रघुवंष के चौदहवें सर्ग में वाल्मीकि ने निर्वासित सीता को यह परामर्ष दिया ता कि तुम यहाँ आश्रम के छोटे छोटे पेड़–पौधों को सींचोगी तो तुम्हें सन्तान प्राप्ति से पूर्व ही मातृत्व का आभास हो जायेगा कि बच्चों का लालन पालन और संवर्द्धन कैसे किया जाये? अभिज्ञानषाकुन्तलम् की नायिका षकुन्तला पेड़–पौधों के प्रति परम स्नेहषीला चित्रित की गई है। वह उन्हें सींचे बिना जलग्रहण करने की कल्पना भी नहीं कर सकती।

इस प्रकार वेदों में उल्लिखित पर्यावरण सम्बन्धी विशयों पर गंभीरता पूर्वक विचार करें

तो लगता है कि वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में पूर्व के लोग भौतिकता के विना भी स्वस्थ व सुखी थे। यदि आज पर्यावरण को ध्यान करके पर्यावरण का संरक्षण करते हुये अपने स्वास्थ्य और आवस्यक सुविधाओं का उपभोग करें तो उससे पर्यावरण संतुलन बनाये रखने में मदद मिलेगी। विष्व की समृद्धि एवं सुख–षान्ति तभी सम्भव है जब प्रकृति के साथ समायोजन बनाये रखें।

REFERENCES

1 मूल ग्रन्थ द्य 1 अर्थषास्त्र (कौटिल्य) संपा. आर. शामषास्त्री मैसूर, 1919 द्य बृहदारण्यकोपनिषद् गीता प्रेस, गोरखपुर द्य सानुवाद शंकर भाष्यसहित) द्य 2 यजुर्वेद संपा. श्रीराम शर्मा ख्वाजा कुतुब,(वेदनगर) बरेली, संस्कृति संस्थान,1981 द्य 3 अथर्व वेद द्य द्य 4 ऋग्वेद (खण्ड एक से चार) संपा. श्रीराम शर्मा ख्वाजा कुतुब,(वेदनगर) बरेली, संस्कृति संस्थान, द्य 5 वराह पुराण अनुवाद – मुनिलाल गुप्त द्य 6 भारतीय समाज एवं संस्कृति खरे, पी. सी. (शिवा : पुस्तक भवन, 1980) द्य कुल पृष्ठ 153 द्य 7 महाभारत गीता प्रेस गोरखपुर द्य (प्रथम खण्ड से 8 खण्ड तक हिन्दी अनुवाद सहित) द्य